RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-03
Issue-10
October-2018

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]

18वीं शताब्दी में भारत की आर्थिक परिस्थितियाँ

रिंकु कुमारी

शोध छात्रा इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

मध्य–काल के अन्त में यूरोपीय अर्थव्यवस्था की उल्लेखनीय विशेषता थी वाणिज्य का विस्तार। नगरों में उद्योग का विकास हुआ अैर इससे व्यापार को प्रोत्साहन मिला। इस प्रकार एक ऐसे वर्ग का जन्म हुआ, जिसने आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण योगदान किया। वह मध्य–वर्ग था। वह न तो सामंती कुलीनों का वर्ग था और न खेतिहर श्रमिकों का। इस वर्ग के उदय ने सामंती यूरोप का रूप ही बदल दिया और उन शक्तियों को गतिशील बना दिया, जिनकी परिणति राष्ट्रीय राज्यों के विकास में हुई। यही कारण था कि नगरों में पले मध्य–वित्त वर्ग के माध्यम से यूरोप की सामाजिक क्रांति पूरी हुई।

कस्बे : उनका व्यापार और उद्योग :–

दूसरी ओर, भारत में परिस्थितियां भिन्न थीं। यद्यपि आत्मनिर्भरता और आजीविकामूलक कृषि से युक्त भारत की ग्राम्य अर्थव्यवस्था की अनेक बातें मध्यकालीन यूरोप की कृषि–व्यवस्था में मिलती–जुलती थी, फिर भी भारत के कस्बों एवं नगरों तथा उनके कला–कौशल और वाणिज्य की संरचना का यूरोप की नगरीय व्यवस्था के साथ नाममात्र का भी साम्य न था। भारत में कस्बों की कमी न थी, पर उनमें ऐसे कस्बे थोड़े ही थे, जिनका अस्तित्व केवल उद्योग अथवा व्यापार पर निर्भर था। आबादी बढ़ने के साथ–साथ वहां उद्योग और व्यापार का विकास हुआ, पर इस बात में वे यूरोपीय नगरों से भिन्न थे कि उनके नागरिक जीवन पर आर्थिक मामलों का प्रभुत्व न था। भारतीय वणिक–वर्ग यूरोप के मध्य–वर्ग से प्रकृति, कार्यों तथा उद्देश्यों, सभी के नाते पूर्णतः भिन्न था। औद्योगिक विकास अथवा राजनीतिक बातों पर इसका वैसा प्रभाव न था, जैसा अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिम में मध्य–वित्त वर्ग का था। इसीलिए भारत में न तो औद्योगिक क्रांति हुई और न एक प्रभुसत्ता, संपन्न राष्ट्रीय राज्य का ही विकास हो पाया। यहां वणिक–वर्ग ने एक उद्यम तथा पुनरूत्थानशील औद्योगिक वर्ग को भी जन्म नहीं दिया।

अनुमान लगाया गया है कि अकबर द्वारा शासित प्रदेश में 3,200 कस्बे थे। आगरा की आबादी अनुमानतः पांच–छः लाख थी। यह आबादी तत्कालीन लंदन की आबादी से अधिक थी। इस दृष्टि से दिल्ली का मुकाबला पेरिस के साथ किया जा सकता था। अहमदाबाद लंदन के लगभग बराबर था। लाहौर का स्थान यूरोप के किसी भी नगर के बाद का नहीं था और पटना की आबादी लगभग दो लाख थी। पर इतनी अधिक आबादी के बावजूद, ये नगर अपने मुकाबले के यूरोपीय नगरों की बराबरी नहीं कर सकते थे क्योंकि इनमें वैसे स्वतंत्र संस्थान विद्यमान नहीं थे जिनकी स्थापना यूरोपीय नगरों और कस्बों में व्यापारी समाजों ने कर ली थी। अठारहवीं शताब्दी में लड़ाईयों, हमलों और अन्य आपदाओं ने विध्वंस मचा दिया और उत्तर में लाहौर, दिल्ली, आगरा, मथुरा आदि नगर और दक्षिण में देश के विस्तृत भू–भाग तबाह हो गए। भारत के समुद्र–तटवर्ती भागों में यूरोपीय व्यापारियों के उदय ने कुछ सीमा तक उक्त विनाश की क्षतिपूर्ति कर दी। वे सोने–चांदी के बदले में भारतीय वस्तुएं खरीदते थे और इस प्रकार उद्योग को बढ़ावा देते थे।

उच्चतर वर्गों की आवश्यकता–पूर्ति करने वाले भारतीय कला–कौशल केवल नगरों तक ही सीमित न थे। कुलीनोपयोगी वस्तु–उद्योगों में नगरों और गांवों, दोनों ने ही प्रवीणता प्राप्त की थी। कारीगरों के विशिष्ट समूह उत्पादन के विशिष्ट अंगों का कार्यभार संभालते थे और विशेषज्ञ मिलजुल कर बिक्री–योग्य वस्तुएं तैयार करते थे। मिसाल के तौर पर, सूती कपड़े के उत्पादन में रूई धुनने वालों, कातने वालों, बुनने वालों, रंगने वालों, विरंजकों, छापने वालों आदि के स्वतंत्र समूह थे। औद्योगिक विशेषता का एक और प्रकार था, विशेष गांवों तथा कस्बों में कुछ विशेष उद्योगों का केंद्रीकरण। अलग–अलग धातुओं का काम करने वाले कारीगर नगर के अलग–अलग भागों मं बसे थे; बढ़ई, जौहरी, लोहार, तेली आदि अपनी–अपनी बस्तियों में रहते थे। उदाहरणतः कुछ गांवों में मोटा कपड़ा तैयार होता था, दूसरों में मलमल और कुछ में पगड़ियां तैयार की जाती थीं। कामदार कपड़ा (कीमख्वाब), रेशमी कपड़ा, सोने–चांदी के तारों (गोट–किनारी) से बना कपड़ा विभिन्न स्थानों पर विशेष रूप से बनाया जाता था।

विशेषज्ञता के प्रवीणता में वृद्धि होती है। इसलिए अपनी कारीगरी की प्रवीणता की दृष्टि से भारत के कारीगरों ने उस समय के संसार में अपना अद्वितीय स्थान बना लिया था। उद्योग–विषयक संगठन और प्रविधियों की दृष्टि से भी भारत पश्चिम की तुलना में कहीं आगे था। भारतीय उद्योग द्वारा निर्मित वस्तुएं केवल एशियाई अफ्रीकी देशों की आवश्यकता–पूर्ति नहीं करती थीं, अपितु यूरोपीय मंडियों में भी

RRIJM 2015, All Rights Reserved

उनकी बहुत मांग थी। वे वस्तुएं समुद्र तथा स्थल–मार्गों से पश्चिमी देशों में पहुंचती थीं।

पूर्वी वस्तुओं के आपूर्तिकर्त्ता भारतीय व्यापारी ईरान की खाड़ी और लाल सागर के समस्त बंदरगाहों में प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित थे। वे कंधार, काबुल, बलख, बुखारा, काशगर आदि में, अफगानिस्तान और मध्य–एशिया में, ईरान में शीराज, इस्फहान, रे तथा मेशेद में और रूस में बाकू, अस्त्राखान, निजनी नोबगोरोद आदि में भी पर्याप्त संख्या में विद्यमान थे। रूस के पीटर महान के कथानुसार, ''भारत का वाणिज्य विश्व का वाणिज्य है और जो व्यक्ति एकांतत, उसका नियंत्रण कर सकता है, वहीं यूरोप का तानाशाह है।''[1]

भारतीय वस्तुएँ पूर्व–एशियाई देशों–बर्मा, मलाया, इंडोनेशिया, चीन–जापान आदि में भी पहुंची थी। कोरोमंडल–तट और बंगाल इन वस्तुओं के आपूर्ति–केंद्र थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. हैमिल्टन, 'प्राब्लेम्स ऑफ मिड्ल ईस्ट' (लंदन 1909), पृ. 62।
2. एफ. बर्नियर, 'ट्रैवेल्स इन द मुगल एंपायर' 'आक्सफोर्ड, 1934, पृ. 258–59।
3. 'द वाएज ऑफ एफ. पाइरार्ड ऑफ लेवल टु द ईस्ट इंडीज', खंड 2, भाग 1, पृ. 248–49।
4. बालकृष्ण, 'कमर्शियल रिलेशन्स बिट्वीन इंग्लैंड एंड इंडिया, 1600–1757', पृ. 279–81।
5. पार्किन्सन, 'ट्रेड ऑफ द ईस्टर्न सीज', पृ. 50।
6. मुखर्जी, 'इकोनामिक हिस्टरी', पृ. 124।

RRIJM 2015, All Rights Reserved